

वक्तव्य

जैन धर्म की निष्ठा है 'नि' अपनी जीवन यात्रा में शान्ति निभयता और वीरता के साथ सम्पन्न करें । न भय किसी प्राणी की भयभीत हुयी भगान वगैरे और न स्वयं भी भस्म और व्याकुल रहें । इसी प्रकार परमोक्त यात्रा भी जाग निभय निर्वेद भाव से करें । मृत्यु से भयभीत हो कर कायर न बनें मृत्यु का अनिराग जानकर उसका स्वागत करें । वीर मरण में वीरों का स्वागत करें ।

जिस तरह जैन श्रयो में जन्म उत्सव का विधान है उसी तरह उनमें मरण उत्सव का भी विधान है । परमव की आयु का अन्त प्राप्त अनिमित्त समय में हुआ करता है अतः उस समय 'गुम आयु' उपाजन करने के लिये स्वच्छ निर्मोह शान्त निभय परिणाम होने अत्यन्त आवश्यक है मृत्यु का गुम करने अधिक होता है अतः उस गुम की कामरता से आत्मा को सुरक्षित रखने के लिये उस समय प्रवृत्त शान्त वैराग्यमयी भावना का होता परम आवश्यक है । शांत, स्वच्छ परिणाम मरण समय में रहने से आत्मा को प्रगामी भव के लिये 'गुम आयु' प्राप्त होती है ।

शान्त निर्मोह निभय भाव से मृत्यु के अनिर्जित करने का नाम ही वीरमरण समाधिमरण साक्षात् मरण या मृत्यु महोत्सव है ।

इस वीर मरण का विधान और विधि सधन से इस पुस्तक में लिख गये हैं । श्री हिंदू विजय विद्यालय वाराणसी के प्राध्यापक 'यादाधाय' श्री प. दरबारी लाल जी काठिया एम. ए. ने यह पुस्तक लिखकर जन साधारण के हितार्थ एवं उपयोगी कार्य किया है अतः वे 'यदाधाय' के पात्र हैं । आशा है अन्य उपयोगी साहित्य पर भी आप सेवनी चलाने का प्रयास करेंगे ।

—अजित कुमार शास्त्री

अन्ती—भा० दि० जन शास्त्री परिवार

जैन दर्शनमें सल्लेखना एक अनुशीलन

पृष्ठभूमि

जन्म के साथ मृत्युका और मृत्युके साथ जन्मका घना प्रवाह सरथ है। जो जन्म होता है उसका मृत्यु भी अवश्य होनी है और जिसका मृत्यु होनी है उसका जन्म भी होता है। इस तरह जन्म और मरणका प्रवाह तब तक प्रवाहित रहता है जब तक जीव का मुक्ति नहीं होता। इस प्रवाहमें जीवका नाश करना और न जाकर भोगना पड़ता है। परन्तु राग-द्वेष और अभिमान विषयोंमें घामक व्यक्ति इस प्रवाह में बाधा डालता है और उसमें मुक्ति पानकी ओर रुख नहीं करता। प्रयत्न जब बंद पड़ जाता है तो उसका वह जो मोहमय मनान नया रूप धारण करता है। और जब कोई मरता है तो उसकी मृत्युपर धाम बहान एक नया प्रकाश बनता है।

परन्तु यह विरक्त मुमुक्षु मन की वृत्ति इसमें भिन्न होती है। वे अपना मृत्युको प्रार्थना मानते हैं और यह सोचते हैं कि जीव-गण गरीरको विजय प्राप्त करके पुनर्जन्म मिल रहा है। अतएव जैन मनीषियों ने उनकी मृत्युको 'मृत्युमहोत्सव' के रूपमें वर्णन किया है। यह वर्णनपद्धति समझना कुछ कठिन नहीं है। यथायथं साधारण ज्ञान मानकर (विषय-व्यापक पापक चतुर्विधता पदार्थों) का आभास समझा है। अतः उनके छाननेमें यह

१ 'जानम्य हि ध्रुवा मृत्युघ्नं व जन्म मृतम्य च । -- शीता २-२७ ।

२ ३ सगा मर्त्यमिच्छन्ता मृत्युर्भीय भवप्रणाम् ।

माशयन् पुन मो वि गान-वराभ्यवर्तिनाम् ॥ -- मृत्युमहोत्सव १३ ।

४ 'मानिन्' भव भवरागात्प्राप्त मृत्यु महोत्सव

स्वरूपम् पुर याति देहात् हा तरन्विति ॥ -- मृत्युमहोत्सव १४ ।

रूपका अनुभव जाना है और उक्त मिलनेम हय जाना है । परन्तु गरीब और आत्मावन् भन्ने समझायाल जानी बीतराणी सन्त न वेवन विषय-वधाय-की पश्यक बाह्य वस्तुपारो ही अपितु अपन परीरको भी पर-प्रनात्मीय मानन हैं । अन धरीरको छोड्नेम उह दुख न हाकर प्रमाणा हाता १ । व अपना वास्तविक निवास इस दुःखप्रधान दुनियाको नही मानन किल मुक्तिका समझत हैं और मदङ्गान ज्ञान चारित्र्य, तप त्याग तयम आदि आत्मीय गुणा को अपना यथार्थ परिवार मानन हैं । कल सतज्ज हो अपन पौर्णिक गरीरके त्यागपर मृत्युमहात्मव । मायें ता काई आन्वय नहा है । वे अपने जग्न अगत जजरित कुछ क्षणाम जागवान और विद-अस्त जागु-गीगु परीरक छोड्ने तथा नय गरीरको ग्रहण करनेम न्सी तरह उत्तुर गव प्रमुत्ति होन हैं जिन तरह राई व्यक्ति अपन पुराने मनिन जीण और काम न ले सकनवान बहकवा छाने तथा नवान बहक परिधानम अधिर प्रमय हाता है १ ।

इसी तम्यका दृष्टिम रमकर मवेगी जन आरक या जन साधु घरना भरण मुधारके लिए उक्त परिस्थितियोंम सन्तलना ग्रहण करमा है । व नना चाहता कि उसका परीर त्याग ल विनयत मकरन करन और गम नयकी अग्निम भुजमने हुए असावधान अवस्थाम हो किलु इह गान और उज्ज्वल परिणामोके साथ विवकपूल स्थितिम बीरारी तरह उसका परीर छूटे । सस्तवना मुमुगु आरन और माधु दाताइ इसी उदयकी पूरक है । प्रस्तुतम उमीके सम्बन्धम कुछ प्रकाश जाना जाता है ।

१ जाग न्हात्कि सब नूनन जायत मत
म मृत्यु कि न मोनाय मता सानोस्थितियथा ॥

—मृत्युमहात्मव श्लो० १५ ।

गीता म भी इसी भावको प्रवर्णित किया गया है । यथा—
वामानि जीर्णानि यथा विण्णय नवानि शुद्धान नरोपराणि ।
तथा गरीरानि विहाय जीर्णान्यवानि यथाति नवानि तेही ॥—गीता २ २२ ।

सल्लेखना और उसका महत्व

‘सन्नेलना’ अथवा ‘अनधम का परिणामिक’ है। ‘सका घघ है—
मन्त्रकलाय कृपाय चेतना सत्नेलना’ सम्यक् प्रकार से काय और कृपाय
दाना का कृप करण मन्त्रवना है। नात्यय यह है कि मरण-ममयम की जाने-
वाना जिस क्रिया विगम बाहरा और भावरा अर्थात् शरीर तथा रागादि
नाशका अन्तर्क कारणों का कम करण दृष्ट प्रसन्नतापूर्वक बिना किसी दबावक
स्व-आय मन्त्रन आधीन कृपिकरण किया जाना है। उम उत्तम क्रिया-विगमका
नाम मन्त्रवना है। उसीका सबाधिमरण’ कहा गया है। यह मन्त्रवना
जीवनभर आर्वागिक समस्त व्रतों तथा और मयमकी मर्शिका है। इसलिए
इस अनमस्यतिम अंतराज’ भी कहा है।

अपने परिणामों के अनुसार प्राप्त जिन धातु इन्डिया और मन बचने काय २००० तान ब्रह्मों के उपयोग का नाम जन्म है और उन्हीं के जन्म अथवा मरण का नाम जीवन का मरण कहा गया है। यह मरण २० प्रकार का है। एक निम्न मरण और दूसरा उच्च-मरण। प्रथम का धातु आर्ग का ह्रास होता रहता है यह निम्न-मरण है तथा उत्तर-मरण का प्रतिक नाम पूर्व पदायक नाम होता उच्च मरण है। निम्न मरण का निरंतर होता रहता है, उसका

१ (व) सम्यग्वाय-वपाय-भवेना मन्त्रेणा । वायस्य बाह्याभ्यन्तराणां च वपायाणां तद्विचारणद्वयानुक्रमेण सम्यग्भवेना मन्त्रेणा ।

—यथाद सर्वाधमिद्धि ७-२२।

(ख) मदगात्रिणी सुल्लभना आपिता

—भा० मुद्रविष्ट तत्त्वायसू० ७-११।

१ स्वायुर्निद्राद्वयमवस्थाया मरणम् । स्वपरिणामाभावात्तन्मयायुष इन्द्रियाराधनानां च कारणत्वात् भक्षया मरणमिति सत्यन्तं मनोपिण्य । मरणं विधम् नियमरगं तद्भूतमरणं चेति । तत्र नित्यमरणं समयं समयं स्वायुराग्नीना निवृत्तिः । तद्भूतमरणं भवान्तर्ग्रह्यन्तारापन्निष्ठं पुनर्भवविगमनम् । —

—अवनद्धत्वं सत्त्वापवा० ७-२५ ।

आत्म-परिणामोपर विशेष प्रभाव नही पड़ता । पर तद्भव-मरणका क्याथा एव विषय-वासनाधोकी 'सन्निधिता' के अनुसार आत्म-परिणामोपर घटती या बुरा प्रभाव अवश्य पड़ता है । इस तद्भव मरणको सुधारन और सद्भावनेक लिय ही पर्यायके अन्तम 'सन्निधिता' रूप भौतिक प्रयत्न किया जाता है । सन्निधितासे अनन्त संसारकी कारणभूत क्याथाका आवरण उपशमित अवस्था क्षीण हो जाता है तथा जन्म मरणका प्रवाह बहुत ही अल्प हो जाता अथवा विलुप्त भूख जाता है । जब सन्निधिता ध्यानाय सन्निधिता धारणपर बन देते हुए बहुत हैं कि जो भक्त एक पर्यायसे समाधिभरण पूर्वक मरण करता है वही सन्निधिता भाव पर्यायसे अतिक परिश्रमण नहीं करता—उसके बाद वह अवश्य योग पा जाता है । ध्याना के सन्निधिता और सन्निधिता धारणका महत्त्व बताते हुए यही एक निष्कर्ष है कि 'सन्निधिता ध्याना' (ध्याना) भक्तिपूर्वक जन्म वन्त और क्याथाका अन्ति करनेवाला व्यक्ति भी स्वर्गतिसे सुखोपे भोगकर अन्तम उत्तम स्थान (निर्वाण) को प्राप्त करता है ।

तेरहवीं गता-ध्याने श्रीः लख पण्डितप्रवर आचारजीने भी इस बातको बड़े ही प्राज्ञान शान्ति स्पष्ट करत हुए कहा है^१ कि स्वस्थ शरीर पथ्य आहार और विहार द्वारा पोषण करने योग्य है तथा शरीर योग्य धीर्धर्मों द्वारा उपचारसे योग्य है । परन्तु योग्य आहार विहार और धीर्धर्मोपचार करत हुए भी शरीरपर उनका अनुकूल प्रभाव न हो

१ तन्मि भवमहमे समाधिभरणे जा भक्त जीवो ।

रा हू सो हिन्नि नहुसो सत्तु नवे पमत्तूण ॥ —भगवती आरा०

२ 'सन्निधिता' भूत जो वचन तिख भनि रागण ।

भोत्तूण य स्व भुव सा पावनि उत्तम गण ॥ —भगवती आरा०

३ 'जन्म स्वर्गोऽनुवत्य स्यात्प्रतिपाद्य' रागिण ।

उपचार निपयस्वस्त्याय सद्धि राग यथा ॥

—आचार मागारधर्मा० ६-६

प्रत्युत राग बढ़ना ही जाय तो एसी स्थितिमें उम गरीरका रुप ही समान
 गान होता ही देखकर है । वे अभावधानी एवं आत्मघातक भाषण
 बचनेके लिए कुछ एसी बातोंकी ओर भी मकन करते हैं जिनके गान से
 ओर अवश्य मरगकी मृचना मिल जाता है । उम हावतम बना का ११ म
 घमकी रक्षाके लिए सन्तुष्टनामे जान हा जाना ही सर्वोत्तम है ।

इसी तरह एवं अन्य विज्ञान भी प्रतिपादन किया है कि जिस गरीर
 का वन प्रतिनिधि शीघ्र हो रहा है भाजन उत्तरोत्तर घट रहा है ओर
 रागात्मिक प्रतिहार करनेका शक्ति नहीं रही है वह गरीर ही विद्वान्
 पुण्याका यथाभ्यास चार्मि (मल्लम्बना) के समयको इंगित करता है ।

मृत्युमहा मन्त्रारकी दृष्टिमें समस्त अनाभ्यास ओर तत्पराचरण ओर क
 प्रताचरणकी साधकता तथा है जब मुमुक्षु शक्ति प्रचला साधु विद्वान्
 हो जानपर मल्लम्बनापुत्र गरीरत्याग करता है । वे निम्न है —

जा फन बढ़ने की पुण्याको वायकनगति तप अहिमात्र वन धारण
 करनेपर प्राप्त होता है वह फन घटत मनसम साधधानीपूर्वक किं नय ममादि
 मरगम जाविक महजम प्राप्त हो जाना है । यथा जो आत्म विभुद्धि प्रतर
 प्रचरक तथा है ओर है वह अ न समयमें ममाधिपूर्वक गरीर-त्याग म प्राप्त
 हो जाता है ।

१ दृष्टान्तिवृत्त मम्यरुनिमित्तोन्तु सुनिश्चिन ।

मृयावाराधनामन्मनदूर न तत्तम् ॥—सागारधर्मा० ८-१० ।

२ प्रतिनिधिम विजहद्वलमुग्धमुक्ति यजत्प्रतीकारम् ।

कपुर्व नृणा निगन्ति चरमरिजोन्त्र समयम् ॥ ध्याना सन १९६

३ मत्पन प्राप्यन सद्भिन्न तावामविम्बनात् ।

तत्पन मूलमाध्य स्यामृत्युवान ममाधिना ॥

तत्तस्य तपमत्वापि पावितस्य वनस्य च ।

पटितस्य अ तस्यापि फन मत्सु ममाधिना ॥—मृत्युमहासर्व श्लोक २१

यन् कालत्रयं स्थि मय उग्र गोका पाव ह्यं व्रताका घोर निम्न
अम्भसं विष ह्यं ग्रास्य जानका एव मात्र पय शान्तिरं माध अमानुभय
अरु ह्यं समाधिपूर्वक भरण करना है ।

विक्रमका दूसरा-तीसरी गता-गोव विद्वान् स्वामी समन्तभट्टकी मायता
नुसार जीवनम आचारेत तथाका पय वस्तुत अन् समयम गृहीत मन्त्रोत्पना
हा है । यन् ये उये पूरी गतिके साथ धारण करनेपर जार लेन है ।

आचार्य पृथ्वाक देवमन्त्रि श्री सन्तत्वनाके मन्त्रेण श्री आचार्यकताका
वनदाने ह्यं निम्न है कि प्रमाण वित्तीको इष्ट नह । १ । जग मनन प्रकारक
माता चान्ति बुध्दुत्थ यन्त्रा आन्त्रिका अवसाध करने वात बिना व्यापारीका
मान उस घरका विनाश कभी नष्ट नहीं है जिसम उक्त बहूमूल्य वस्तुएँ रखी
हई है । यदि यन्त्राचिन्त उमक विनाशका कारण (अग्निका लगना या आजाता
या राज्यम बिलवका हा जाना आन्त्रि) आन्त्रियन हा जाय ता वह उगरी
रणाका पूरा उपाय करता है और जब रणाका उपाय मफल हुआ हुआ शिवा
नहा न्ता तो घरम रस हा उन बहूमूल्य वस्तुओं की बचान का भयमक
प्रयत्न करता है और घर का नष्ट होन न्ता है । उसी तरह यन्त्राचिन्त
गुणा का अजन करने वाला यन्त्रा-आचार्य या साधु भी उन यन्त्राचिन्त गुण रत्न
का आधारभूत गरीर की पारत अह्मर औरपाचि द्वारा रक्षा करता है
उनका नाग उय इष्ट नह है । पर नदकन गरीर म उमक विनाश-कारण
(असाध्य रोगाचि)

१ अन् क्रिशाधिहरण तन्त्रकन सहाय्यनि स्तुत ।

तस्मादावन्त्रिभय समाधिभरती प्रयत्नितयम् ॥—राजवरणभा० ५२ ।

२ मरुत्स्थानिष्ट-भात् । यथा वलि ता विविधपञ्चननानानमचयारस्य

बहुविनाशो निष्ट । मरुत्स्थानकारण अ कुतश्चिदुपस्थित यथागानि परिहरति

परिहारे च मरुत्स्थाना यथा न भवति तथा यन्त्रे । एवं शृङ्खलादि

गोपीकभयसचय प्रवणमानसन्तः प्रपन्न न पातमभिवाञ्छति । तन्पण्यवकारणे

ताम्रिना मरुत्स्थानाविराजन् परिहरति । दुपारहार च यथा स्वगुणाविनाश

भवति तथा प्रयत्नत । —सवाधयि ७-२२ ।

उत्प्रेक्षित हो जाय तो वह उनका दूर करने का यथामार्ग प्रयत्न करना है। परन्तु जब मनना है कि उनका दूर करना अशक्य है और मरिच का रसा अत्र सम्भव नहीं है तो उन सम्मुख बन-जीनादि आत्म-शुद्धि की वृत्ति-वर्धना द्वारा रसा करना है और मरिच का गन्ध हीने देना है।

इस उक्त्या से सम्बन्धनाही उपयोगिता प्राप्त करता और महाना
गर्भ में जानी जा सकती है । लगना है कि इसी कारण जन-मनोविधि से
सम्बन्धना पर बड़ा बल दिया गया है । जन मनोविधि से जन-मनोविधि
पर प्राकृतिक मनुष्य विधि आदि मापदण्डों से जनोचित स्वतन्त्र प्राप्त है ।
प्राचीन विधि की भगवत् आराधना इस विधि का एक प्रधान प्राधान्य
और महत्त्वपूर्ण विधान प्राप्त-व्यवस्था है । इसी प्रकार मनुष्यमत्त
महाविधि-मनुष्यमत्त । प्राचीनमनुष्यमत्त आदि नामों से मनुष्य तथा विधि
में भी इसी विधि पर जन-मनोविधि उपस्था है ।

सहस्रनाका बाल, प्रयोजन और विधि —

यद्यपि ईश्वर त्रिवन्धनम गुरुवन्दनाया काल और प्रयोजन जानता है तथापि उस वही और भी अधिक स्पष्ट किया जाना है। याचना समस्तभक्त्यामीन गुरुवन्दना याचनाया काल (दिनि) और याका प्रयोजन बतवाते हुए लिखा है।

उपसर्गं दुर्भिक्षो जगति दत्तायां च नि प्रतीक्यते ।

धर्मयि तनुविमोक्षमाह सत्तेष्वनामार्था ॥

—सुनकराष्ट्रधायका० ५—१

‘अपवित्राय उग्रमग्निं बुद्ध्या योऽराग—इति धर्मस्याप्रो म
ध्यामयम वा रगा व विर को गरीर वा त्याग दिया जाना है वह
मुल्लेखना है ।

स्मरण रह कि जनशक्ती-आवक या साधु की दृष्टि में शरीर का उनका महत्व नहीं है जिनका ध्याना का है क्योंकि उनके भौतिक दृष्टि का शरीर और साध्यात्मिक दृष्टि को उच्च माना है , धनपर वह भौतिक शरीर की उक्त उपायगति भवदावम्भाभि म जो साधारण धृति का

निश्चित कर देन चाही होती है आत्म धर्म में व्युत्पन्न होना हुआ उसकी
 रक्षा में निश्चय सम्भवभाव पूर्वक शरीर का उत्पन्न कर देता है। वास्तव में
 "म" प्रकार का विवेक बुद्धि और निरहिमाव उसे अनन्त वर्षों के विरतन
 सम्प्राप्त और साधना द्वारा ही प्राप्त होना है। इसी से मन्त्रलना एक
 प्रत्यासाय प्रतिधारा का है जिस उच्च मन्त्र स्थिति के व्यक्ति ही वास्तव में
 पाते हैं। सब बात यह है कि शरीर और आत्मा के मध्य का अन्तर
 (जो कि बहुत ही दूर और अस्थायी है नया पाना चेता उत्पन्न और

भाषी है) जान उन पर सत्यज्ञान-भाषण कल्पित होकर होता। उस
 अन्तर का ज्ञान यह स्पष्ट जानना है कि शरीर का नाग मन्त्र ही होगा
 उसका नियम अविनश्यकर फलदायी धर्म का नाग नहीं करना चाहिये क्योंकि
 शरीर का नाग ही जान पर ही दूसरा शरीर पुन मित सकता है।
 परन्तु आत्म धर्म का नाग होना पर उसका पुन मिलना शुभ है। धर्म
 का शरीर मोती नहीं होने व आत्मा और अनात्मा के अन्तर को जानकर
 मन्त्राधिमरण शरीर आत्मा से परमात्मा का आरंभ करने है। जन मन्त्रेय
 लक्ष्य धर्म तत्त्व निहित है इसी से प्रत्येक जन शोभासना के अन्त में
 प्रतिनिधि यह पवित्र वाचना करता है।

२ विवेक । आकाश जगद् बहुत होने के कारण मैं आपके चरणों के
 गङ्गा में आया हूँ। उसका प्रभाव में सब सब दुःख का अभाव हो दुःख
 के कारण ज्ञानावरणादि धर्मों का नाश हो और धर्मनाग के कारण समा
 धिमरण के कारण भूत सम्पन्नभाव (विवेक) का नाश हो।

जन सत्सक्ति में मन्त्रलना का मन्त्री आत्मनिष्ठ उद्देश्य एवं प्रयोजन स्वी
 कार किया गया है। नौदिक भाग या उद्देश्य या इन्द्राणि पद की उसमें
 १ नाविक नागिन स्त्रियो धर्मों में उद्देश्य वाच्य ।

देहो नष्ट पुनरम्या धर्मवत्तु त-तुलना -मा पृ० ८-७

३ दुःख-व्यभिचारी-व्यभिचारी समाधिधर्मन च वाहिताहा य ।

मम हृत् जगद्बोध । मन्त्र जिनवर धर्मनगरम् ॥

—भारती पृ० ५० ८७

कामना नहीं की गई है। मृषुषु आवश्यक या माधु ने जो सब तक तत्प्राप्ति
प्राप्त का धोर प्रयत्न किया है, कष्ट सहें हैं धारमशास्त्र बढ़ाई है धीम
धर्माधारण धारम ज्ञान को ज्ञात किया है उसपर मुन्दर कर्म रक्षने के
दिये सन् धर्मिय समय में भी प्रमाद नहीं करना चाहता। अतएव य
ज्ञात रहना हुआ सत्त्वसत्ता में प्रवृत्त होता है -

सत्त्वसत्तावस्था में उसे कसी प्रवृत्ति करना चाहिए और उसकी विधि
क्या है? इस सम्बन्ध में भी जन लेखकान विस्तृत और विग्न विवेचन किया
है। आचार्य समस्तभद्रने सत्त्वसत्ता की निम्न प्रकार विधि बतलाई है -

सत्त्वसत्ता-धारी सबसे पहले दृष्ट वस्तुओं में राग अनिष्ट वस्तुओं में द्वेष
"नी पुत्राणि प्रियजनो मे ममत्वं और घनाणि मे स्वामित्व का त्याग करके
मन को मुक्त बनाये। इसके पश्चात् अपने परिवार तथा सम्बन्धित व्यक्तियों
में जीवन में हुए अपराधों को क्षमा कराये और स्वयं भी उन्हें प्रिय बचन
बोतकर क्षमा करे।

इसके अनन्तर वह स्वयं क्षिय, दूसरा ले कराये और अनुमादना क्षिय
हिंसादि पापों की निन्दित भाव से ध्यानीयता (उन पर श्रेष्ठ प्रकाशन) करे
तथा मृदुपण्य महाव्रतों का अपने में धारोप करे।

इसके प्रतिरिक्त धारमा का निबल बनाने वाले पाप मय अवस्था
गति, अनुपत्ता और अनुलता जन धारम विकारों का भी परिस्थान कर
ने तथा धारम-बल एवं उत्साह का प्रकट करके धर्मोपम शास्त्र-अर्थों
द्वारा मन को प्रसन्न रखे।

इस प्रकार कथाय की ज्ञान्त प्रपक्वा लीए करते हुए शरीर की म
उप करने के लिए सत्त्वसत्ता में प्रथमतः धनादि बाह्यर का फिर दूय

१ स्नेह कर सम परिग्रह चापहाय शुद्धमना ।

स्वजन परिजनमपि च शास्त्रा दमपेक्षित्यवचन ॥

धालोप्य सवमन कृत-कारितमनुमन च निर्व्याजम् ।

धारोपये-महाव्रतमाभरणस्याधि नि शेषम् ॥

नोक भयमवसाद क्लेश कानुप्यमरतिमपि हित्वा ।

सर्वोत्साहमुदीय च मन प्रताप धृतरमृत ।।

साधु आदि वेद पदाधीन वा त्याग करे । इसका अनन्तर बीबी या गम जन्म पीने का सम्मान करे ।

अतः ये उद्दे भी छोड़कर गवितपूषक उपवास करे । इस तरह उपवास करत एव पक्षपशुमेष्टी का ध्यान करते हुए पूरा निश्चय के साथ सावधानी से मगीर का छोड़े ।

इस अन्तरङ्ग और बाह्य विधि से सत्सत्समाधारो आनन्द ज्ञानस्वभाव आत्मा का साधन करता है और बतमान पर्याय के विनाश में चितित नहीं होता किन्तु मायी पर्याय को घषिक शुष्की गान्त, गुह्य एव उच्च बनाने का पुरुषार्थ करता है । नरवर से अनन्तर का साथ हा ना उम कीन बुद्धिमान् छोड़ना चाहेगा ? एवम सत्सत्सना धारण उम पाँच शीर्षों में भी अपने को बचाता है जिनमें उसके सन्देशना-धर में पूरा रमने की सम्भावना रहती है । वे पाँच दोष निम्न प्रकार बतलाये गये हैं -

सत्सत्सना से मन के बाध जीवित रहने की आकांक्षा करना बन्धन मग सकन के कारण गीम मरन की इच्छा करना भयभीत होना साहिवा का स्मरण करना और अगली पर्याय में मुक्ता की चाह करना--ये पाँच सत्सत्सनाधर के दोष हैं जिन्हें अतिचार' कहा गया है ।

मन्त्रोक्तना का फल

सत्सत्सना-धारक धर्मका पूरा अनुभव और लाभ लेनेके कारण नियम

आहार परिहाय कर्म स्निग्ध विवर्द्धयेत्यानम् ।

स्निग्ध च हापयित्वा क्षरणान् पुरयेत्कर्मण ।

क्षरणान् हापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि गत्वा ।

पञ्चनमस्कारमनास्तनु त्यजतमवयसन ॥—रत्नक० धा० ५ ३-७ ।

जीवित मरणांगसे य मित्रमृति निदान-नामान् ।

सत्सत्सनातिचारः पञ्च त्रिनेत्र समादिष्टा ॥—रत्नक० धा० ५, =

निश्चयस्य धर्मवा श्रमण्य प्राप्त करता है । समन्तमद्रवामी न सन्नेतना
का पद बनलाने हुआ सिद्धा है^१ —

उत्तम मन्त्रलना करन वाला धर्मरूपा श्रमण का पान करन क कारण
सम्पन्न हुआ से रहित होकर या तो वह निश्चयस्य को प्राप्त करता है और
या श्रमण्य को पाना है जहाँ उसे अपरिमित सुखों की प्राप्ति होनी है ।

विन्धर पण्डित धागाधरजी भी कहते हैं^२ कि जिस महापुरुष ने सत्कार
परम्परा क भाग्यक समाधिभरण की धारण किया है उसने धर्मरूपी महामु
निधि को परमवर्धमान जान कर लिये अपने साथ ले लिया है जिससे वह
उसी तरह सुखी रहे जिस प्रकार एक घाम से दूसरे घाम को जान वाला
शक्ति पान में पर्याप्त बाधेय होने पर निराश्रुत रहता है । इस जीव न
अन्त बार मरण किया किन्तु समाधि महिष पुण्य भरण कभी नहीं किया
या सीमावर्धन या पुण्यान्य से सब प्राप्त हुआ है । सर्वशेष ने इस
समाधि महिष पुण्य भरण की बड़ी प्रशंसा की है क्योंकि समाधिपूर्वक
भरण करन वाला महान् आत्मा त्रिचय में सत्काररूपी विन्दे की तोड़ देता
है—उसे फिर सत्कार के बन्धन में नहीं रहना पड़ता है ।^३

मन्त्रेखना र्थ महायक और उनका महत्त्वपूर्ण कर्षण्य

धाराधक जब सन्नेतना न नेता है, तो वह उसमें सब आदर प्रम

१ निश्चयममण्य निस्तीर दुस्तर मुनाम्मुनिधिम् ।

नि पिबति पीतधर्मा नवेदु मरणातीद ॥—रत्नक० ५६ ।

२ महगामि वृत्तं तेन धर्मसत्त्वमात्मनः ।

समाधिभरणेन यत्र भवति विधिर्माधितम् ॥

प्राज्ञानुनाश्रुनाश्रुता प्राप्तास्तद्भवमृत्युव ।

समाधिपुण्ये न पर परमधरमण्य ॥

पर यत्प्राप्ति माहात्म्य सबान्धरमण्ये ।

मस्मिन्महाहिता श्रवणा भञ्जति भव-पञ्जरम् ॥

—सा० घ० ७-१८ ८-२७, २८ ।

धीर श्रद्धा व साध मन्त्र रहना है तथा उत्तमोत्तर पूज्य साधना की रक्षा द्वारा धारममाधमा के गतिगीत रहना है । उससे 'स पुण्य काय य जिम तस महाद यज्ञ' कहा गया है । पूर्ण सफल बनाने धीर उस धारने पवित्र पथ से विचलित न होने देन के लिए निर्धारित साध (मम धिमरण बगाने चान धनुभरी मुनि) उनकी सत्नेरता के सम्पूर्ण 'क्ति एम धार व साध' से महायता पहुँचाते हैं । धीर समाधिमरण के उसे सुस्तिर रखते हैं । के साथ उसे स-वज्ञानपूर्वक मधुर उपदेश करते तथा 'गीर धीर सगार की धारता एम धारमगुरता स्थिता' के जिमने वन उन में 'क्ति म हो' लिए वह हम समझकर छोड़ चुका या छोड़न का सफल बन चुका है । उनकी पुन बाह न कर । साधाय गिय व न भगवती धारधरा (गा० ६५०-६७६) में समाधिमरण बगाने वाले इन निर्धारित मुनियों का बड़ा सुंदर और शिष्ट बलून बिधा है । उक्त निम्ना है -

ये मुनि (निर्वाचक) धर्मधिय हृदयश्रद्धा की पावभीरु पीपह बना, दग कान जाता, धारमगुर विचारक स्वाधमाग मयस धनुभरी स्वपर-तत्वविदेकी विज्ञानी और परम उपकारी हुल है । उनकी लक्ष्य साधकतम ४८ धीर 'मुनितम २' होती है ।

'४८ मुनि सपक की इस प्रकार सेवा कर । १ मुनि : गुरु का उठान बठान बादि रूप से 'गीर की रहन कर । २ मुनि धम धारण कराये । ३ मुनि भोजन और ४ मुनि पान कराये । ५ मुनि देख भास रख । ६ मुनि शरीर के मय मूत्राणि शेषण से तहर रहे । ७ मुनि वसतिहा के द्वार पर रह जिससे धनक लोग धारक के वारिण्याओं में शोभ न कर सक । ८ मुनि सपक की धाराधना की सुनकर धारें लोगों की समा में धर्मोपदेश द्वारा न तुष्ट करें । ९ मुनि रात्रि के जागें । १० मुनि दग की ऊँच-नीच स्थिति में जान से तवर रहे । ११ मुनि बाहर से धारें गयो से बातचीत करें । और १२ मुनि सपक व समाधिमरण के विज्ञान करन की सम्भावना में धम आगे से बाध (आस्थाध द्वारा धम प्रभावना) करें । इस प्रकार ये निर्वाचक धनि सपक की समाधिसे पूरा प्रयत्नस सहायता करने हैं । धरत धीर

ऐरावत धर्मों के काम की विषमता होने से जसा अवसर हो धीरे जितनी विधि बन जाये तथा जितने गुणों के कारण निर्वाण मिल जायें उतने गुणों वाले निर्वाणों से भी समाधि करायें अनिश्चित है। पर एक निर्वाण नहीं होना चाहिये, कम से कम दो होना चाहिये क्योंकि एकमात्र एक निर्वाण क्षण की २४ घण्टे तथा करने पर एक क्षण और क्षण की समाधि अच्छी तरह नहीं करा सकेगा।

इस कथन में दो बातें प्रकाश में आती हैं। एक तो यह कि समाधि मरण कराने के लिये दो से-कम निर्वाण नहीं होना चाहिये। मध्यम है कि क्षण की समाधि अधिक दिनों तक चले और उत न्याय में यदि निर्वाण एक ही हो। उसे विद्या नहीं मिल सकता। अतः कम से कम दो निर्वाण होना ही चाहिये। दूसरी बात यह कि प्राचीन काल में मुनियों की इतनी बहुलता थी कि एक एक मुनि की समाधि में ४८ ४८ मुनि निर्वाण होते थे और क्षण की समाधि की वे निर्विघ्न सम्पन्न कराते थे। ध्यान रहे कि यह साधुओं की समाधि का मुख्य वर्णन है। आर्यों की समाधि का वर्णन यहाँ नहीं है।

ये निर्वाण क्षण की, जो कस्याणकारी उपदेश देते तथा उन सम्पत्तियों में सुस्थिर रहते हैं। उनका वर्णित आनाथर जी में बड़ा मर्म वराम किया है।^१ वह, कुछ यही दिया जाता है —

१. विषय धर्मा दह धर्मा सविमावउत्तमीरुणो धीरा ।

सुखं पचदया पचसत्तालुमि य विन्नु ॥

कल्याणो पुत्तमा समाधिकरुणमुत्ता मुद रहस्मा ।

गीत्तया भयवती पचदातीस (४८) गु लिउत्तवया ॥

लिउत्तवया य दोष्णि वि होति जहणुणु कालससपणा ।

एकको लिउत्तावययो ए होइ इदया वि जितमुत्त ॥

विशेष भयवती धाराधना ।

हे शायक ! लोक में ऐसा कोई पुद्गल नहीं, जिसका तुमने एक से अधिक बार भोग न किया हो, फिर भी वह तुम्हारा कोई हित नहीं कर सका । परवस्तु क्या कभी आत्मा का हित कर सकती है ? आत्मा का हित तो उसी के ज्ञान सयम और अद्वैत गुण ही कर सकते हैं । मत बाह्य वस्तुओं से मोह को त्यागो विवेक तथा सयम का आश्रय लो । और सदा यह विचार करो कि मैं शून्य हूँ और पुद्गल शून्य है । मैं चेतन हूँ ज्ञाता-द्रष्टा हूँ और पुद्गल अचेतन है ज्ञान-दशन रहित है मैं भान दघन हूँ और पुद्गल ऐसा नहीं है ।

हे शायकराज ! जिस सस्तेखना को तुमने अब तक धारण नहीं किया था उसे धारण करने का सुधवसर तुम्हें आज प्राप्त हुआ है । उस आत्म हितकारी सस्तेखना में कोई शोक न माने दो । तुम परीवहो—धुपादि के कपटों से मत घबराओ । व तुम्हारे भारमा का कुछ बिगाड़ नहीं सकते । उन्हें तुम सहनशीलता एवं धीरता से सहन करो और उनके द्वारा बर्णों की असह्य गुणी निजरा करो ।

हे शायकराज ! मत्स्यत दुःखदायी मिथ्यात्व का दमन करो सुखदायी सम्यक्त्व का अराधन करो, पक्षपरमेष्ठी का स्मरण करो, उनके गुणों में सतत अनुराग रखो और अपने शुद्ध ज्ञानोपयोग में लीन रहो । अपने महा-प्रतीकों की रक्षा करो, बर्णों को जीतो इन्द्रियों की बन्ध में करो सदा आत्मा में ही आत्मा का ध्यान करो, मिथ्यात्व के समान दुःखदायी और सम्यक्त्व के समान सुखदायी तीन लोक में अब कोई वस्तु नहीं है । देखो, वनदत्त राजा का सघ-श्री मंत्री पहले सम्यग्दृष्टि था पीछे उसने सम्यक्त्व की विराजना की और मिथ्यात्व का सेवन किया, जिसके कारण उसकी प्राप्ति फूट गई और सत्सार चक्र में उसे घूमना पड़ा । राजा शत्रुघ्न तीव्र मिथ्या दृष्टि था, किंतु बाद में उसने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया, जिसके प्रभाव से उसने अपनी बंधी हुई शरक की स्थिति को कम करके तीव्रतर प्रवृत्ति का भोग किया और अविध्यत्वान में वह तीव्रतर होगा ।

इसी तरह है शपक । जिन्होंने परीयहों एवं उपमगों को जीत करके महाव्रतों का पावन किया उन्होंने अश्रुदय और निश्चय प्राप्त किया है । मुकुमाल मुनि को देखो वे जब वन में तप कर रहे थे और ध्यान में भग्न थे, तो शृगामिनी ने उन्हें कितनी निन्दता से साया । परन्तु मुकुमाल स्वामी जरा भी ध्यान से विचलित नहीं हुए और धीरे-धीरे उपमग सत्कर उत्तम गति को प्राप्त हुए । शिवभूति महामुनि को भी देखो उनके विर कर प्राची से उड़कर वास का ढेर धा पड़ा परन्तु वे भारत ध्यान में रची मर भी नहीं डिगे और निश्चल भाव में गरीर त्याग कर निर्वाण को प्राप्त हुए । पाँचों पाण्डव जन तपस्या कर रहे थे तो कौरवों के भानज प्रादि ने पुरातन धर्म निवासने के लिए गरम मोह की मत्तियों से उन्हें बाँध दिया और कीलिया ठोक दीं किन्तु वे प्रदिग रह और उपमगों को सत्कर उत्तम गति को प्राप्त हुए । मुषिष्ठिर भीम और अजन भोग गये तथा नकुल और सहदेव सर्वाप सिद्धि का प्राप्त हुए । विद्यारथर व किना भारी उपमग महा और उमन मद्गति पाई ।

धत है धाराधक । तुम्हें इन महापुरुषों को धपना आदग बनाकर धीर-धीरतः । सब कष्टों को सहन करते हुए धारम-मीन रहना चाहिये जिससे तुम्हारी समाधि उत्तम प्रकार से हो और अश्रुदय तथा निश्चय को प्राप्त करो ।

इस लिए निर्वापक मुनी शपक की समाधिपरण से निश्चल और भावधान बनाय रखते हैं । शपक के समाधिपरण रूप महान् यज्ञ की मकलजा में इन निर्वापक साधुवरा प्रभुत एवं अद्वितीय सद्भाव होने से उनकी प्रशंसा करते हुए आचार्य शिवायन लिखा है ।

‘ वे महानुभाव (निर्वापक मुनि) धय हैं जो धपनी सम्पूर्ण शक्ति सगाकर बड़े आदर से साथ शपक की सत्तनना करते हैं’ ।

१ ते चि य महानुभावा घण्णा जेहि थ तस्स सबयस्स ।

सम्भार-सत्तीण उवविहिदाराधणा समसा । —म० धा० गा, २०००

गज्जलम्बना के भेदः

अन शास्त्रा मे गरीर का त्याग तीन तरह से बताया गया है ।
एक अत दूसरा व्याधित और तीसरा स्वयं

१ अयुत—जो आयु पूर्ण होकर गरीर का स्वतः गूटना है वा
अत कहलाता है ।

२ व्याधित—जो विष मगल रक्त क्षय, धातु-क्षय शस्त्र-घात
सर्वज, घमि—आह जन—प्रवेग, गौर पतन आदि निमित्तकारणा मे
गरीर छोड़ा जाता है वह व्याधित कहा गया है ।

३ त्यक्त—रोगादि हो जाने और उनकी असाध्यता तथा मरण
की आशयना जात होने पर जो विवेक सहित ग-यास क-परिणाम
मे गरीर छोड़ा जाता है वह त्यक्त है ।

इन तीन तरह के गरीर-त्यागों मे त्यक्त गरीर-त्याग सब-
भ्रष्ट और उत्तम माना गया है क्योंकि त्यक्त अवस्था में आत्मा पूर्ण-
तया जाग्रत एवं सावधान रहता है तथा कोई सम्भेग परिणाम नहीं
होता ।

इस त्यक्त गरीर-त्याग की ही ममाधि-मरण, स-यास-मरण,
पण्डित-मरण और सन्नेलना-मरण कहा गया है । यदि
सन्नेलना-मरण (त्यक्त शरीर त्याग) भी तीन प्रकार का प्रतिपादन
किया गया है — १ भक्तप्रत्याख्यान, २ इगिनी और ३ प्रायोपनसन ।

१ भक्त प्रत्याख्यान—जिस शरीर-त्याग में अन्न-पान की चीर
धीरे कम करत हुए छोड़ा जाता है उसे भक्त-प्रत्याख्यान या भक्त-
प्रतिज्ञा-मल्लजना कहत है । इसका काम-प्रमाणमूलतम अतमुहूर्त है
और अधिवनन बारह घण्टे है । मध्यम अतमुहूर्त से ऊपर तथा बारह
घण्टे से नीचे का काल है । इससे धाराबद्ध आत्मातिरिक्त समस्त पर
छोड़ता है और अपने गरीर की रहस्य स्वयं भी करता है और दूसरों
से भी कराता है ।

१ आ नेमिक० गोष्म-द्वयसार कमकाष्ट, गा ०३६ ३७, ३८ ।

संघ में ही दण्ड आय तो उम हासत में मुनि इस समाधिमरण को पहला करता है। इमनिष्ट इसे निरुद्ध अविचार भक्तप्रत्याख्यान-सत्त्वसत्ता कहते हैं। यह दो प्रकार की है—१ प्रकाश और २ अप्रकाश। सोच में जिनका समाधिमरण विद्यात हो जाये, वह प्रकाश है तथा जिनका विद्यात न हो, वह अप्रकाश है।

६ निरुद्धतर— सर्व, अग्नि, व्याघ्र महिष हाथी, शीशू और, अन्तर मूर्खा, दुष्ट पुरुषों आदि के द्वारा मरण नित्य प्राप्त हो जाने पर आयु का घन जानकर निश्चयपूर्वक प्राणार्थक के समीप अपनी गहरी निद्रा, करता हुआ साधु शरीर त्याग करे तो उसे निरुद्धतर अविचार भक्त प्रत्याख्यान समाधिमरण कहते हैं।

३ परमनिरुद्ध—सर्व व्याघ्रादि व भीषण उपर्यास व घाने पर वाली दण्ड आय बोल में निरुद्ध लगे ऐसे समय में मन में ही घर हस्तादि पंच परमस्थियों के प्रति अपनी आसक्ति बना रहता हुआ साधु गहरी त्यागे तो उसे परमनिरुद्ध भक्तप्रत्याख्यान-सत्त्वसत्ता कहते हैं।

सामान्य मरण की अपेक्षा समाधिमरण की श्रुति

प्राणार्थ नियम में सतरह प्रकार के मरणों का उल्लेख करके उनमें विशिष्ट पाँच^१ तरह के मरणों का वर्णन करते हुए तीन मरणों को प्रशंसनीय एवं श्रेष्ठ बतलाया है। वे तीन^२ मरण ये हैं—

१ पण्डितपण्डितमरण २ पण्डित मरण और ३ बालपण्डितमरण।

उक्त मरणों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है^३ कि अतएव। गुणस्थानवर्ती अयोधनेश्वरी भगवान का निर्वाण-यमन पण्डितपण्डितमरण।

१ पण्डितपण्डित मरण पण्डित बाल-पण्डित येव।

बाल-मरण अथर्व पंचमय बालबाल च ॥ —अ० धा० मा० २६।

२ पण्डितपण्डित मरण च पण्डित बालपण्डित येव।

एदाणि त्रिणि मरणाणि त्रिणि शिष्य पश्यति ॥—अ० धा० मा० २७।

३ पण्डितपण्डितमरणे लीलाकसाया मरति इवमिणो।

विरदाविरदा जीवा मरति तदियं मरणेण ॥

है प्राचारीय-महानुमार चारित्र्य के कारण प्रसिद्ध है, देवप्रतीक धारण करने वाला है।
 धविरत-सम्प्रादित्य का मरण बालमरण के समान है।
 'बालबालमरण' है। ऊपर जो बालमरण के लक्षण दिये हैं, वे इस
 इन तीन समाधिमरणों का कथन करते हैं। यह सब कहकर
 का कथन है। अर्थात् वे पण्डित मरण के हैं।

समाधिमरण के कर्ता, कारण, प्रकार और दर्शकों की श्रमः—

विशेषात् इन सात्त्विकता के कारण होने वाले समाधिमरण
 उत्तम महायज्ञ हो, आहार-धौरव-मरण के लक्षण धारण करने
 प्रगट करने वालों को पुण्यगामी बनाने के लिये दिये हैं।
 व लिलित हैं। —

वे मुनि धर्म हैं, जिन्होंने सत्य के लिये अपने समाधिमरण
 ग्रहण कर चार प्रकार (दशन, ज्ञान, कर्म, धर्म) की आराधना
 सभी पताका को ग्रहण है।

वे ही आत्मगामी धीर जाते हैं एवं अपने अन्तर्गत आत्मा को
 है जिन्होंने दुलभ भगवती आराधना (सम्पन्न) के लिये किया है।

जिस आराधना को लिये वे आत्मगामी धीर जाते हैं।

- पाधोपगमण मरण भद्राप्यन्ता व दृष्टिः
 तिविह पद्धिमरण सादृश्य अद्वैतविद्युः
 धविरदसम्प्रादित्य मरति बालमरणे व दर्शकः
 मिच्छादिद्वि व पुण्यो पचमए बालबालमरणे व दर्शकः २८, २९।
 १ ते सूर्य भयर्ता आत्मवदकण सप मरणः
 आराधना-पचम व उच्यते चिदा २९।
 ते यन्ता ते शास्त्री सद्यो भाग्यो व तेहि ३०।
 आराधना भयवदी पद्धिपन्ना जेहि सपुण्यः
 किं नाम तेहि भोगे महानुभावेहि हृद्य व ३१।
 आराधना भयवदी सयमा आराधिता वै ३२।

महीनर पात, उस माहावता को जिहोंने पूछरूप से प्राप्त किया, उनकी सहिमा का वगून कीन कर सका है ?

व मदानुसार जी धर्म है जो पूरा शान्त और समस्त
शक्ति के साथ क्षमकही आदरणीय-करत है।

इ.ओ धर्मज्ञान पुरुष धर्मकी शाराधना मे, उपर्युक्त, साक्षात्-गान, श्रीपथ व स्थानां के ज्ञान द्वारा मनुष्य के जीवन के श्री समस्त शराधनाओं को निर्विघ्न पूर्ण करने निश्चित है। प्राप्ति मान ३ ।

वे मनुष्य भी पुण्यप्रायी है कृताय ॐ श्री वायव्यमाली मन्त्र को
 स्तुति-वाक्य धारक स्त्री मीराई मधुपूजा भक्ति श्री शक्ति देवी माधवदेवान
 केरत ॥ मधार्द्रि धारक के शिखर, वनमां धीर वृजन म प्रबन्ध होति है ।

यदि पक्षत नाना आदि स्थान तथापि न सविन हान मे तीर्थ
बहु जाते हैं और उनको समर्पित देना वा जाती है ता नवागुण की
शान्ति शपक तीर्थ क्यों नहीं कहा जावेगा ? यहाँ उक्तो, व द्वा और
और दान का भी वही फल प्राप्त होता है या तीर्थ-वन्दना वा होता
है । १२- १३- १४- १५- १६- १७- १८- १९- २०- २१- २२- २३- २४- २५- २६- २७- २८- २९- ३०- ३१- ३२- ३३- ३४- ३५- ३६- ३७- ३८- ३९- ४०- ४१- ४२- ४३- ४४- ४५- ४६- ४७- ४८- ४९- ५०- ५१- ५२- ५३- ५४- ५५- ५६- ५७- ५८- ५९- ६०- ६१- ६२- ६३- ६४- ६५- ६६- ६७- ६८- ६९- ७०- ७१- ७२- ७३- ७४- ७५- ७६- ७७- ७८- ७९- ८०- ८१- ८२- ८३- ८४- ८५- ८६- ८७- ८८- ८९- ९०- ९१- ९२- ९३- ९४- ९५- ९६- ९७- ९८- ९९- १००-

यदि पूर्ण सृष्टि की सन्तुष्टि के लिये सन्तुष्टि-करन-साला का पुण्य होता है तो साधन-क्षय की सन्तुष्टि एवं दान-करन-दान, पुण्य-काप्रचुर पुण्य का लोचन क्यों नहीं है ? अतः सन्तुष्टि-करन-साला का पुण्य

■ वि म महागुमात्रायणा जेहि व तम्भु सत्रयकुम्भ ॥ १२५०-
सर्वीन्द्र-सर्गोद्भवविद्विदाराधना भगवन् ॥ १२५१ ॥ ॥ ॥
जो अवधिपेदि म वाग्देवी आराधनायु चण्डिका ॥ १२५२ ॥ ॥ ॥
मपञ्जलि निजिद्वारा मयुक्त आराधना तस्थ ॥ १२५३ ॥ ॥ ॥
त वि कन्त्या चण्डिका य द्रुति जे प्रावकम्म-भनभूरले ॥ १२५४ ॥ ॥ ॥
प्रायति सवय निज्वे सर्वोद्भव भर्त्सि सजुत ॥ १२५५ ॥ ॥ ॥
गिरि पदियान्निर्देसो तित्थाणि त्वार्थगोहि जेहि सुविदी ॥ १२५६ ॥ ॥ ॥
तित्थ कथ ज दृष्टा त्वार्थगोहि सव्य स्वयम् ॥ १२५७ ॥ ॥ ॥

पुण्य रिमोक्ष पङ्क्तिमात्र व्यङ्ग्याणस्तु हाहृ जज्ञि पश्यन् ।

महात्माय सत्यासिधौ या भिक्षुघो का नहीं क्योंकि उनका परिवार में कोई सम्बन्ध नहीं रहना और इसलिये उन्हें धारोष्टि क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती^१ । उनका तो जल निखात या भू निखात किया जाता है^२, यज्ञ भी ध्यान देने योग्य है कि हिन्दु धर्म में धारोष्टि सम्पूर्ण क्रियाओं में मृत शक्ति के विषय भाग तथा सुख-मुक्तिधर्मों के लिये ही प्रायताएँ की जाती हैं । हर्षे उसके धार्मिक लाभ प्रयत्न मोक्ष के लिए ईच्छा का बहुत कम सहित मिलता है । जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पान के लिये कोई प्रायता नहीं की जाती^३ । पर जैन सत्सेवना में पूरातया धार्मिक लाभ तथा मोक्ष-प्राप्ति की भावना स्पष्ट सन्निहित रहती है भौतिक एषणाओं की उसमें कामना नहीं होती । इतना यहाँ ज्ञातव्य है कि निष्पद-मिथुनारण जपधारी गृहस्थ और वानप्रस्थ के अतिरिक्त धातुर धर्मात्त मुमुक्षु (मरणाभीलायी) और दुःखित धर्मात्त चोरव्याघ्रादि स भयभीत व्यक्ति के लिए भी सत्यास का विधान करने वाले कतिपय मतोंका उल्लेख किया है^४ । उसमें कहा गया है कि 'सत्यास लेनेवाला धातुर

१ डा० रामचन्द्राणी पाण्डेय हिन्दू संस्कार पृ० ३०३ ।

२ हिन्दू संस्कार पृ० ३०३ तथा कमलाकरभट्टकृत निष्पदसिंधु पृ० ४४७ ।

३ हिन्दू संस्कार पृ० ३४६ ।

४ सत्यनन्द ब्रह्मचर्याना सत्यसेवक गृहादपि ।

वनाहा प्रयज्जेद्वातानुरो वाप्य दुःखित ॥

उत न संकटे घोर चोर- व्याघ्रादि-भोचरे ।

भयभीतस्य संन्यास मङ्गला मनुस्मृत्यात् ॥

यत्किञ्चिन्धक कर्म कृतमज्ञानतो मया ।

प्रमादानस्योपायलोत्तरवक्तवानहम् ॥

एव सत्यस्य भूतेभ्यो वक्ष्येऽभयदक्षिणम् ।

पद्भ्यां कराम्भ्यां विहरन्नाह वाक्वायमानसै ॥

करिष्ये प्राणिनां हितां प्राणिनस्तु निर्भया ।

—कमलाकरभट्ट, निष्पदसिंधु पृ० ४४७ ।

धनवा दुःखित यह सकल्प करता है कि मैं जो भक्षण, यज्ञ या यासस्य शोध से मुरा कम किया उस में छोड़ रहा हूँ और सब जीवों का अमाय-दान देता हूँ तथा विचरण करते हुए किसी जीव की हिंसा नहीं कर पा । किंतु यह बचन सत्यासी के मरणांत-समय के विधि-विधान को नहीं बतलाता केवल सयाम लेकर भागे की जाने वाली अर्घ्यरूप प्रतिज्ञा का दिग्गजन कराना है । स्पष्ट है कि यही सयास का यज्ञ अथ विवक्षित नहीं है आ जन-सत्सेवना का अर्थ है । सयाम का अर्थ यही साधुदत्ता—कर्मदान—सयास नामक चतुष आश्रम का स्वीकार है और सत्सेवना का अर्थ भक्त (भरण) समय में होने वाली क्रिया विनियोग (कषाय एवं कायका इषीकरण करते हुए आश्रम को कुमरण से बचाना तथा आवरित सद्यमादि आश्रम धर्म की रक्षा करना) है । जन सत्सेवना जन दर्शन की एक विनियोग देन है जिसमें पारलौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन को उच्चतम तथा परमोच्च बनाने का महत्व निहित है । अन्वये रागाग्निसे प्रेरित होकर प्रवृत्ति न होने के कारण यह गुह्य आध्यात्मिक है । निष्पत्ति यह है कि सत्सेवना आश्रम—मुषार एवं आश्रम—सारक्षण का अंतिम और विचार पूर्ण प्रयत्न है ।

१. यदिच साहित्य में यह क्रिया-विनियोग मनु-पतन, अग्नि-प्रवेग जन-प्रवेग आदिके रूपमें मिलती है । जसा कि माय के गिणुपालवध की टीकामें उद्धृत निम्न पद्य से जाना जाता है

अनुष्टनासमर्षस्य शानप्रस्थस्य जीयत ।
अश्वत्ति-जस-सम्पत्तैररण्यं प्रविधीयते ॥

—गिणुपालवध ६-२३ की टीका में उद्धृत

किंतु जन साहित्य इस प्रकार की [क्रियाओं] को मायता नहीं दी गई और उन्हें सोक्यूडना बताया गया है —

अपगा-मागर-स्नानमुच्छय विषयाश्मनाम् ।

गिरिपातोऽग्निपातवच सोक्यूड निगच्छते ॥

समस्तत्र रत्नकण्ड

अ० भा० दि० जैन शास्त्री परिषद् द्वारा प्रकाशित देवटो पर मम्मतियाँ

युक्त श्रेष्ठ द्वारा 'तीनों पुस्तकें प्राप्त हुये । 'अस्तिनापुर' की
विशेष विद्वान् नयति-अनियति ' अस्तिनापुर का प्रमाण प्रमाण
के 'म' टकरा द्वारा विशिष्टतापूर्ण 'य' तथा 'की' गट्ट है- 'र' जैन
पुस्तक में मयलता की विद्वतापूर्ण 'म' से 'तुलन' और 'अ' अ
पुस्तक द्वारा 'की' गट्ट 'य' तथा 'से' अस्तिनापुर मित्र 'की' गट्ट है । अस्तिना
सुगंध और 'य' यानी शैली में लिखा गया 'अस्तिनापुर' का 'गौरव'
इस 'र' 'म' मान्य में भीत का पंथर है । आप 'य' तथा 'य'
'की' निम्न 'य' रचित । 'म' प्रमाण 'य' हेतु मेरी शक्ति
न्याय ।

—कविस्तन प्रकाश जैन पटना ।

तीन पुस्तकें मिले यह योजना बहुत अच्छी है, इस से
समाज की लाभ होगा ।

—५० पन्नालाल श्री साहित्याचार्य सागर ।

'आपक' द्वारा भेजी गई 'तीनों पुस्तकें यथामय मिली
पुस्तकें बहुत सुन्दर हैं ।

—५० मशीधर न्यायराजभावे बीना ।

'आपकी भेजी हुई तीनों पुस्तकें मिली इस के लिए
धन्यवाद है ।

—५० मन्मथलाल दहली ।

'तीनों पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी एवं सामर्थ्य हैं । 'अस्तिनापुर'
गौरव मरीची 'य' 'य' की सामर्थ्य 'आप' प्रकाशित करें तो
समाज का बड़ा लाभ होगा ।

—५० अमृतलाल देशगिरी वाराणसी ।

★ ★ ★ ★

‘आमन घन हुए भीसे’ का बहुत ही बिड़ला पूरा गया
बादल प्रमाण गर्जित है आकाश का व रोचक है ।

—भी कुरा जैन देना

★ ★ ★ ★

अभी महिमा व जो भीत दुगधें घाई है यदि उत्तम है ।
नेहिन हस्तिनापुर का कर्मि मा यदि उत्तम वन में निभाया गया है ।

—प० हुनन का जैन सागराव

★ ★ ★ ★

हीने दुध का बहुत ही उत्तम व सामावित है । आकाश
है समान व विमान वस्तु नाम में ।

—प० निरर का जैन चर्मपुर देहरी

★ ★ ★ ★

‘प०’ जैन का भी कुरा महापदका सामावित पुष्पिता
है विद्वत् अध्ययन विज्ञान महापदका है । समाज के जाने हुए विज्ञान
‘प०’ कोष्ठा भी ने जैन कान व महापदका नामक मनु पुष्पिता
म वरदा कभर रत्न निभा है । जैन समाज के बावरी कमठ जन
नवी विज्ञान प० बाकुनाप जैन अकाशर न नाम अध्याम कौरव
पाठकों की ज्ञातावधी प्राग म्यक्कीय कानि माव धरत नाप,
धर्मनाप की अमरपनी हस्तिनापुर का कान वरी ही रावक घनी
में किया ।

—मोती भाव जैन विजय